International Journal of Applied Research 2015; 1(2): 263-264

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(2): 263-264
www.allresearchjournal.com
Received: 14-11-2014
Accepted: 16-12-2014

डॉ० नीता माथुर
एसोसिएट प्रोफेसर, विवेकानन्द कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ० नीता माथुर
एसोसिएट प्रोफेसर, विवेकानन्द कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

हिन्दुस्तानी संगीत में होलीगान की विकास यात्रा – एक अध्ययन

डॉ० नीता माथुर

प्रस्तावना

भारतीय समाज मे श्रृंगार और उल्लास की अभिव्यक्ति के प्रतीक स्वरूप 'होलिकोत्सव' का एक विशेष महत्व है । प्राचीन ग्रंथो मे इसे ही मदनोत्सव, मदन महोत्सव अथवा होलिकोत्सव नामो से जाना जाता था । वैदिक वाङ्गमय, संस्कृत एवं प्राकृत–अपभ्रंश साहित्य, संगीत लक्षण ग्रंथो, नाटक एवं काव्य आदि सभी परम्पराओं मे होली के अवसर पर विविध प्रकार के गायन–वादन एवं नृत्य परम्पराओं के दर्शन होते हैं ।

वैदिक वाङ्गमय मे विभिन्न ऋतुओ मे किए जाने वाले यज्ञानुष्ठानो मे चातुर्मास्य यज्ञों का उल्लेख हुआ है [१]। वसंत ऋतु मे होने वाले इन अनुष्ठानों मे विशिष्ट प्रकार के वैदिक मंत्रों और साम गायन से स्तुति करने का विधान था । वसंत ऋतु मे रथन्तर साम का गान अभीष्ट था [२]। वात्स्यायन के अनुसार सुवसंतक, मदनोत्सव आदि सुअवसरों पर नृत्यगीतादि का आयोजन प्रत्येक सुसंस्कृत नागरिक के सामाजिक जीवन का अनिवार्य अंग था [३]। पुराण ग्रंथो के (स्कन्द पुराण, मत्स्य पुराण, भविष्य पुराण) के साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि मदनोत्सव चैत्र शुक्ल द्वादशी को आरम्भ होता था । चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को नाना प्रकार के अश्लील गान भी गाए जाते थे और पूर्णिमा के दिन सार्वजनिक रूप से उत्सव मनाया जाता था [४]। इस उत्सव के दो रूप थे – प्रथम सार्वजनिक धूमधाम का और दूसरा कामदेव पूजन का । संस्कृत साहित्य की प्राचीन कृतियों मे यथा हर्ष कृत रत्नावली, दामोदर गुप्त कृत 'कुट्टनीमतम' काव्य और राजशेखर की 'कर्पूर मंजरी' मे मदनोत्सव पर प्रदर्शित किए जाने वाले गान एवं नृत्य का विशद वर्णन उपलब्ध होता है [५]।

वसंत और फाल्गुन ऋतु से संबंधित नृत्य गान विधाओं मे रास, रासक, नाट्य रासक, चर्चरी, फागु रास एवं धम्माली आदि का अंतर्भाव है । भारतीय संस्कृति के इतिहास मे ये कृतियां एक सुदीर्घ एवं समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा की संवाहक हैं । कालक्रमानुसार वसंत और फागुन ऋतु मे श्रृंगार रस पूर्ण गीत, काव्य, नाट्य, अभिनय और साहित्य की विविध विधाओं का विकास हुआ जो 'वसंत रास' या 'फागु रास' के नाम से जानी गई । फागु रासो में संगीत के विविध पक्षों यथा–राग, ताल, काव्य, छंद इत्यादि का सुंदर समन्वय हुआ है । श्री अक्षयचन्द्र शर्मा ने फागु को मधुमहोत्सव रूपी गेय रूपक कहा है [६] ।

बारहवीं शताब्दी मे कवि जयदेव का 'गीत गोविन्द' इसी वसंत रास अथवा फागु रास पद्धति का निदर्शन करने वाला एक अद्वितीय काव्य है । मध्यकाल तक आते आते यही रास परिपक्वावस्था को प्राप्त हुआ और इसका व्यापक प्रचार समस्त उत्तर भारत, गुजरात, उड़ीसा, मिथिला, बिहार, आसाम, बंगाल आदि प्रान्तों मे हुआ । वसंत और फाल्गुन से जुड़ी श्रृंगारात्मक गान नृत्य विधाओं मे 'धम्माली' और 'चर्चरी' जैसी परम्पराओं का उल्लेख विभिन्न संगीत शास्त्रों में .भी हुआ है । वसंत एवं होली के वर्ण्य विषय को लेकर यूं तो अनेक गेय विधाएँ विभिन्न प्रान्तों के लोक संगीत मे प्रचलित हैं, तथापि शास्त्रीय विधि से गाई जाने वाली प्रमुख विधाओं के रूप में 'होरी धमार' एवं 'होली ठुमरी' को होली गान के अंतर्गत माना जाता है । अतः 'होरी' (होली धमार) एवं 'होली' (होली ठुमरी) नामों से अभिहित की जाने वाली इन गेय विधाओं का सम्बन्ध भी मुख्य रूप से वसंत एवं होलिकोत्सव से ही सिद्ध होता है ।

हिन्दुस्तानी संगीत के अंतर्गत होली गान की प्रमुख विधाओं से सम्बंधित ऐतिहासिक तथ्यों के अध्ययन से प्रमाणित होता है कि इनकी विकास श्रृंखला वसंतोत्सव एवं फाल्गुन मास मे आयोजित 'चर्चरी' व 'धम्माली' जैसी श्रृंगार परक गान नृत्य परम्पराओं से संबद्ध है ।

'चर्चरी' एक विस्तीर्ण परम्परा का संवहन करती है जिसके अंतर्गत 'धम्माली' आदि विभिन्न विधाओं का समावेश है । श्री डी. जी. व्यास के अनुसार 'धमार गान चर्चरी से संबद्ध है'(७)। 'धमार' शब्द के अनुरूप 'धम्माली' एवं 'चांचर' के अनुरूप चर्चरी, चच्चरी, चांचरि, चांचर इत्यादि नृत्य गान परक विधाओं का उल्लेख विभिन्न संगीत लक्षण ग्रंथो तथा मध्यकालीन ब्रजभाषा साहित्य मे मुख्य रूप से वसंत ऋतु एवं होलिकोत्सव के संदर्भ मे हुआ है ।

'चर्चरी' शब्द के अनुरूप 'चच्चरी' नामक गान प्रबंध का लक्षण युक्त विवेचन मानसोल्लास, संगीत रत्नाकर, गुनयात–उल–मुनया, संगीत शिरोमणि, संगीत राज आदि प्राचीन एवं कई मध्यकालीन ग्रंथो मे भी उपलब्ध होता है । इन ग्रंथो मे वर्णित चच्चरी के लक्षणों के आधार पर स्पष्ट होता है कि चच्चरी के विभिन्न भेद प्रचलित थे और यह भिन्न–भिन्न तालों एवं छन्दों मे गाई जाती थी [८]।

'संगीत शिरोमणि' और 'संगीत राज' ग्रंथो मे चच्चरी के अतिरिक्त 'धम्माली' प्रबंध का भी लक्षण युक्त विवेचन उपलब्ध होता है और इसे फाल्गुन ऋतु मे गेय (फल्गूत्सव) विधा माना जाता था । 'धम्माली' मे राग वसंत, यतिलग्न एवं एकताली तालों का विनियोग निर्दिष्ट किया गया है [९]।

कवि चंदवर दाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' मे 'धमारि' गाए जाने का उल्लेख मिलता है [१०]। ब्रजभाषा साहित्य के परवर्ती कवियों के काव्य मे भी होली विषयक असंख्यो पदो में 'धमार', धमारि, चर्चरी, चांचरि आदि का नामोल्लेख गान एवं ताल के संदर्भ मे हुआ है [११]। अष्ट छाप कवियों की वाणियों तथा वार्ता साहित्य मे भी धमार एवं चांचर गान से संबद्ध विभिन्न प्रसंग उपलब्ध होते हैं ।

मध्यकाल मे संस्कृति एवं कलाओं का अदभुत समन्वय हुआ । मुगलों की राजधानी आगरा थी जो कि ब्रज प्रदेश के ही समीप थी । अतः ब्रज की संस्कृति और कलाओं का प्रभाव मुगल राज दरबार पर भी पड़ा । मुगल सम्राट अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, शाह आलम, बहादुर शाह जफर आदि के नाम से अंकित होरी रचनाएं मिलती हैं । जहाँगीर स्वयं महफिले होली मे उत्साह पूर्वक भाग लेते थे । शाहजहांनी युग मे होली को ही आब–ए–पाशी या ईद–ए–गुलाबी नाम से जाना गया । उर्दू शायरी और अरबी फारसी के ग्रंथो मे भी दरबारी होली के प्रसंगों का रोचक वर्णन हुआ है । रास संगीत से प्रेरणा लेकर ही लखनऊ के अंतिम शासक वाजिद अली शाह स्वयं स्त्रियों की संस्था 'परीखाना' के सहयोग से 'रहस' (रास) का आयोजन करते थे[१२]। इन 'रहस' आयोजनों मे होलियों एवं ठुमरियो का प्रयोग होता था । वाजिद अली शाह ने 'अख्तर' उपनाम से कई बंदिशें बनाई जो उनकी रची पुस्तकों 'बनी', दुल्हन, नाजो, सौतुल मुबारक इत्यादि मे संकलित हैं ।

रहस्यवादी संत कबीर, सूफी कवि मलिक मौहम्मद जायसी, अष्ट छाप के वाग्गेयकारों, मीराबाई आदि संगीतज्ञ भक्त कवियों ने अपने पदों मे होली का सरस और मार्मिक चित्रण करते हुए उन्हे विविध राग रागिनियो तालों मे बद्ध किया । इनकी पदावलियों मे यत्र तत्र चांचर, चांचरि, धमारि, फाग, रसिया आदि विभिन्न होली विषयक शैलियों का उल्लेख मिलता है ।

मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन के प्रसार के साथ विभिन्न कृष्णोपासक सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ । वल्लभ सम्प्रदाय, राधावल्लभ, हरिदासी, गौडीय एवं निम्बार्क संप्रदायों के अनुयायी आचार्यो एवं भक्तों ने अपनी वाणियो के माध्यम से न केवल उत्कृष्ट कोटि का साहित्य सृजन किया बल्कि उन्हे विविध गान शैलियों, राग रागिनियो, छंद एवं तालों मे आबद्ध करके भारतीय संगीत कोष को भी समृद्ध किया ।

वल्लभ संप्रदाय अथवा पुष्टि मार्गीय मंदिरो के संगीत को आकाशवाणी प्रसारण सेवा द्वारा १९५०–५५ के लगभग 'हवेली संगीत' ये नामकरण दिया गया । पुष्टिमार्गीय मंदिरो में आज भी वसंत पंचमी से लेकर होलिकोत्सव तक प्रभु विग्रह के समक्ष होली पद रचनाओं का गान पारम्परिक रूप से किया जाता है ।

न केवल मंदिरो की परंपरा एवं शाही दरबारो मे, बल्कि सूफी खानकाहों पर भी वसंत ऋतु मे 'रंग' और 'धमाल' के गीतो का प्रचलन हुआ जिसका श्रेय हजरत अमीर खुसरो को है। यह परम्परा आज भी सूफियो के चिश्ती सिलसिले मे दिखाई देती है जहां वसंत पंचमी के दिन सरसों के फूलो को हाथो मे लेकर खुसरो रचित गीतों 'हजरत ख्वाजा संग खेलीये धमाल', 'आज रंग है री मा' अथवा 'मोहे अपने ही रंग मे रंग ले' जैसी रचनाओं के माध्यम से सूफी संतो को भावभीवी श्रद्धांजली दी जाती है ।

लोक संगीत का दायरा बहुत विशाल हैं । भारत के विभिन्न प्रान्तों और ग्रामीण अंचलो मे भिन्न भिन्न प्रकार की होलियां सुनने को मिलती हैं । ब्रज की होली सदा से ही प्रसिद्ध है । श्रीकृष्ण राधा और गोप–गोपांगनाओं की होली का सरस वर्णन ब्रज की संगीत परम्परा मे मिलता है । इसके अतिरिक्त समस्त उत्तर भारत में – गढ़वाल, कुमाऊँ, पूर्वी एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि प्रान्तों मे होली के अवसर पर किए जाने वाले गान नृत्यादि के अंतर्गत चांचर या चांचरि, धमाल या धमार गीतो का प्रचलित होना इन सब संगीत परम्पराओ के पारम्परिक संबंध को सूचित करता है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उपनिषद कालीन समाज एवं संस्कृति, डॉ. राजेन्द्र कुमार त्रिवेदी, पृष्ठ संख्या २२५, परिमल पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, 1983
2. परांजपे,शरतचन्द्र, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ संख्या २८, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी,1969
3. वात्स्यायन कामसूत्रम, नागरक वृत प्रकरणम, द्वितीय अध्याय, संपादक माधवाचार्य, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
4. शब्दकल्पद्रुमः भाग –3, पृष्ठ संख्या ५८७, राजा राधाकान्त देव बहादुर, चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1961
5. (अ) हर्ष कृत रत्नावली, प्रथम अंक, सं0 एम.आर.काले., बुक सेलर्स पब्लिशिंग कम्पनी, तृतीय संस्करण, बम्बई, 1964
   (ब) कुट्टनीमतम् काव्यम, दामोदर गुप्त, श्लोक संख्या ८९१–८९२, अनुवादक अत्रिदेव विधालंकार, इण्डोलोजिकल बुक हाउस, वाराणसी
   (स) कर्पूर मंजरी, राजशेखर, चतुर्थ जवनिकान्तरम, पृष्ठ संख्या १६८–१७१, सं. रामकुमार आचार्य, चौखम्बा विघाभवन, वाराणसी, 1970
6. राजस्थानी भाषा और साहित्य, हीरालाल महेश्वरी, पृष्ठ संख्या २९१, आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता, संवत् 2017
7. Background of Kathak Marg 1959;XII(4):7.
8. संगीत रत्नाकर, शार्ङ्गदेव, चतुर्थ प्रबन्धाध्याय, श्लोक संख्या २९०–२९१, संपादक एस. सुबह्मण्यम शास्त्री, अडयार, मद्रास, 1976, 1978
9. फल्गूत्सवे द्वादशभिरष्टभिर्वा यथा रूचिः ।
   चतुर्भिः चरणैर्बद्दा धम्माली प्रोच्यते बुधैः ।।
   –संगीतराज, प्रकीर्ण प्रबंधानाम् चतुर्थ परीक्षणम, श्लोक संख्या ९७–९९, कुम्भकर्ण, संपादक डा0 प्रेमलता शर्मा, हिन्दू विश्वविधालय संस्कृत पब्लिकेशन बोर्ड, 1963
10. 'धाम धाम गावत धमारि', पृथ्वीराज रासो (प्रथम भाग) पृष्ठ २१, महाकवि चन्दवरदाई, संपादक वी.पी. शर्मा, विश्वभारती प्रकाशन, चण्डीगढ
11. (अ) इक गावत है धमारि इक एकनि देत गारि । (सूरदास)
    –सूरदासकृत सूरसागर (भाग २) ।द्वितीयखंड।, पद संख्या ३५०९, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी सम्वत् 2007 विक्रमी
    (ब) गावत फाग धमार हरषि भर हलधर औ सब ग्वाल । (नंददास)
    –अष्टछाप परिचय, प्रभुदयाल मीतल, पृष्ठ संख्या ३२६, अग्रवालप्रेस, मथुरा, विक्रमी–2006
    (स) चर्चरी अति विकट ताल, गावत संगीत रसाल (कृष्णदास)
    – हिन्दी के कृष्णभक्ति कालीन साहित्य मे संगीत, उषा गुप्ता, पृष्ठ संख्या ३७३, लखनऊ विश्वविधालय, लखनऊ, 2016 विक्रमी
12. पुराना लखनऊ (गुज़िश्ता लखनऊ), अब्दुल हलीम शरर, पृष्ठ संख्या १६८, अनुवादक नूर नबी अब्बासी, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1971